

भारतीय दर्शन में शिक्षा की अवधारणा

रंजना मिश्रा

प्रवक्ता

अध्यापक शिक्षा विभाग

ललिता टीचर ट्रेनिंग इस्टीट्यूट

रघुवीर नगर, थलोई, मछलीशहर जौनपुर



भारतीय शिक्षा जगत में दर्शन का अर्थ छात्र में शिक्षा रूपी वस्तु को रखने के लिए पात्र के रूप में तथा शिक्षा को अनुशासन के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दर्शन में जितनी भी शाखाएं हुई हैं उनमें पराविद्या के द्वारा अमरत्व प्रप्ति का विधान है। भारतीय दर्शन में अपरा विद्या को पराविद्या तक पहुंचाने का सोपान कहा गया है। यह आठ प्रकार की अपरा, विद्या में परमतत्व या जगत के कारण का ज्ञान प्राप्त किया जाता है और यह ज्ञान होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति परमसत्ता के अंग हैं। इस प्रसंग में गीता का यह मत है:-

भूमिरापो नलोवायुः खं मनौ बुद्धिरेव च ।

अहंकार तृतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टथा ॥

वर्तमान की शिक्षा में स्थूल से सूक्ष्म का ज्ञान इसी नियम के अन्तर्गत छात्रों को दिया जाता है। बौद्ध धर्म में भी संसार की अनित्यता का ज्ञान होने के बाद ही निर्वाण प्राप्त करने की स्वीकृति प्राप्ति होती है। अतः इस मत के अनुसार भी स्थूल का ज्ञान प्राप्त कर सूक्ष्म तत्व की ओर गतिशील होकर लक्ष्य प्राप्ति करा देना शिक्षा दर्शन है यथा:-

सव्वपापस्य अकरणं कुशलस्तुय सम्पदा ।

सचित्तपरियोदयनमं एतं बुध्दानशासनं ॥

भारतीय दर्शन में शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है, 1-ऐहलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति 2-पारलौकिक निःश्रेयस की उपलब्धि। लौकिक साधनों को प्राप्त करने हेतु अपरा और पारलौकिक सुख हेतु पराज्ञान का विधान है। अपरा के अन्तर्गत अठारह प्रकार की विधाएं आती हैं। इनकी प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश किया गया है-

अविद्रयया मृत्युतीर्त्वा विद्या मृतमश्नुते ।

बौद्ध धर्म में भी दोनो प्रकार की विद्या प्राप्त करने का आदेश दिया है:-

मग्गानं अट्ठंगिकोसेट्टो, सच्चानं चतुराकपदा ।

विरागो सेट्टो धन्याणनंदिपदानंच चक्खुमा ॥

भारतीय शिक्षा दर्शन में विद्यार्थी को अन्तःवासी कहा जाता था क्योंकि वह गुरु गृह या आश्रम में ही रहता था। यहां रहकर अध्ययन करने के दो कारण थे। प्रथम यह कि उसे पात्र बनाने में गुरु को सुविधा होती थी दूसरा यह कि छात्र गुरु के सद्आचरणों का अनुकरण करता हुआ अनेक प्रकार की शिक्षा से मंडित हो जाता था। गुरु की सेवा से उसे गोप्य वस्तुओं का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता था।

यथा खन्न खनित्रेणनरोवार्यधिगच्छति ।

तथा गुरुगतामं विद्याशुश्रुषुरधिगच्छति ॥

गुरु की वाणी को छात्र सुनकर याद कर लेते हैं उसके बाद मनन ध्यान करते थे

निःशुल्क, सशुल्क एवं वैकल्पिक तीन प्रकार की ग्रह शिक्षा प्रणाली गुरुकुलों के अतिरिक्त गावों के गुरु गृहों में भी प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त राज्य परिवारों, या विशिष्ट परिवारों में अध्यापकों की नियुक्ति कर अध्यापन कराया जाता था। अध्यापन कार्य करने वाले अध्यापकों को तीन भागों में विभाजित किया गया था जो क्रमशः अपनी योग्यताओं के आधार पर आचार्य, उपाध्याय, और गुरु नाम से सम्बोधित होते थे। इसके अतिरिक्त कुलपति भी होते थे परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प थी।

उपनिषद में यह कहा गया है:—“श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यामितव्य” प्रशिक्षण का कार्य खुली प्रकृति में होता था। गुरु दो प्रकार की शिक्षण विधियों से छात्रों को ज्ञान प्रदान करते थे। महाभाष्यकार ने इन विधियों का उल्लेख इस तरह किया है:—

यदधीतमविज्ञातमं निगदेनवशद्यते ।

अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥

वैदिक संहिताओं में कंठस्थीकरण, पदपाठ, धनपाठ, तथा उच्चारण की विधियों का उल्लेख प्राप्त होता है। आज अमेरिका में वर्णमाला विधि का उपयोग हो रहा है। इस विधि के द्वारा किसी भाषा को शीघ्र सीखने में सहायता मिलती है।

अध्ययन की अनेक विधियों के अतिरिक्त लेखन विधि का विकास भी इस काल में हो चुका था। पुराणों एवं उपनिषदों में लेखर्षम शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। लेखर्षम का अर्थ लेखन में श्रेष्ठ होता है। पुष्दन्त रचित शिव महिम्नः स्तुति में

लेखन विधि का वर्णन इस प्रकार है:—

असितगिरि समंस्यत् कज्जलं सिन्धु-पात्रे,

सुरतरु वर शाखा लेखनी पत्र मूर्वी ।

लिखित यदि गृहत्वाशारदासर्वकालम्,

तदपि तव गुणानामीशपारं नजाति ॥

भारतीय दर्शन में शिक्षा का प्रायोगिक रूप भी प्राप्त होता है। स्कन्ध पुराण के अनुसार नारद को गुरु आश्रम का सबसे कनिष्ठ छात्र ने सम्बद्ध विद्या का प्रायोगिक ज्ञान दिया था। गीता के नवम अध्याय में भी इस आशय का संकेत प्राप्त होता है:—

अहंकतुरहं यज्ञः स्वधाहम हामौषधम् ।

मन्त्रो हम हमेवाज्यम हमग्निरहंहुतम् ।।

इस काल में जीवनोपयोगी विषय के रूप में साहित्य संगीत आदि की शिक्षा दी जाती थी जिसको प्राप्त कर छात्र सामाजिक जीवन में पीछे नहीं रहते थे अतः सामाजिक शिक्षा अनिवार्य थी:-

साहित्य संगीत कलाविहीनः ।

साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः ॥

अध्ययन अध्यापन में शिक्षार्थी एवं शिक्षक की भूमिका अध्यात्मपरक थी इसीलिए कहा गया कि:-

“अध्यापनं ब्रम्ह यज्ञः पितृ यज्ञायत्तुर्पणमं ।”

इस अध्यात्म परक चेतना को अक्षुण्ण रखने के लिए शिक्षक एवं, छात्र अनेक नियमों से बंधे थे इस संदर्भ में गीता कहती है:-

तद्धिद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेस्यन्तिते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

निःशुल्क, सशुल्क एवं वैकल्पिक तीन प्रकार की ग्रह शिक्षा प्रणाली गुरुकुलों के अतिरिक्त गावों के गुरु गृहों में भी प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त राज्य परिवारों, या विशिष्ट परिवारों में अध्यापकों की नियुक्ति कर अध्यापन कराया जाता था। अध्यापन कार्य करने वाले अध्यापकों को तीन भागों में विभाजित किया गया था जो क्रमशः अपनी योग्यताओं के आधार पर आचार्य, उपाध्याय, और गुरु नाम से सम्बोधित होते थे। इसके अतिरिक्त कुलपति भी होते थे परन्तु इनकी संख्या अत्यल्प थी। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रचीन भारतीय शिक्षा दर्शन में वर्तमान एवं भविष्य के साथ अखण्ड आनन्द प्राप्त करने के लिए शिक्षा को एक साधन के रूप में देखा गया था। आज इस बात की आवश्यकता अधिक है कि इस भौतिक युग में जिसमें विज्ञान के आविष्कार ने मनुष्य शब्द की परिभाषा पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है इस परिस्थिति में, प्राचीन भारतीय दर्शन द्वारा निरूपित शिक्षा को स्थापित किया जाय और छात्रों के नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान को परिपुष्ट कर विश्वबन्धु की भावना का विकास किया जाय जिसमें सर्वे भवन्तु सुखीनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्ति मा कश्चित दुःखभागभवेतु हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गीता
2. गीता
3. गीता
4. गीता